The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 3 | Issue 12 | December 2025
ISSN: 2583-973X (Online)
Website: www.theacademic.in

भारतीय ज्ञान परंपरा में पाठ्यचर्या एवं शिक्षक

डॉ. ऊषा शर्मा

प्रवक्ता - (अध्यापक शिक्षा विभाग, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, 10 जवाहर बाग, दयालबाग, आगरा-282005

ई-मेल - ushasharma9216@gmail.com

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.18240708

प्रस्तावना : व्यक्ति का सर्वांगीण विकास समाज की चतुर्मुखी उन्नति तथा सभ्यता की बहुमुखी प्रगति ज्ञान के द्वारा ही संभव है। अगर भारत में शिक्षा की बात करते हैं तो भारत में शिक्षा आज से लगभग 4000 वर्ष पूर्व प्रारंभ हुई ऐसा माना जाता है। परंतु वह अपने व्यवस्थित रूप में नहीं मानी गई। शिक्षा के सुसंबद्ध रूप का दर्शन वैदिक युग में ही देखने को मिलता है। ऋग्वेद का रचनाकाल 2500 ई.पू. माना जाता है। तब से लेकर बौद्धकाल के आरंभ तक को वैदिक काल की ही संज्ञा दी जाती है। कुछ विद्वान वैदिक काल और बौद्ध युग के आरंभ के बीच के काल का पुनर्विभाजन करते हैं और उसे उपनिषद और ब्राहमण काल की संज्ञा देते हैं और यही कारण है कि उत्तर वैदिक कालीन शिक्षा को वैदिक कालीन शिक्षा ही कहना अधिक संगत होगा। कुछ विद्वानों द्वारा वैदिक काल को अनेक उपकालों में बाँटा गया है जैसे ऋग्वेद काल, ब्राहमण काल, उपनिषद काल, सत्रकाल और स्मृति काल आदि किंतु उपकालों मं वेदों की प्रधानता रही है और इस कारण प्राचीन शिक्षा के नाम से ही संबोधित करना अधिक सुसंगत होता है। प्राचीन भारतीय विद्वान ज्ञान के महत्व से भलीभाँति परिचित थे। परिणाम स्वरूप उन्होंने एक सुसंगठित शिक्षा प्रणाली का प्रतिपादन किया। इस शिक्षा प्रणाली के फलस्वरूप न केवल विशाल वैदिक साहित्य है बल्कि ज्ञान के विविध क्षेत्रों में मौलिक विचारकों का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने भारत के मस्तक को ऊँचा उठाया। भारतीय ज्ञान परंपरा के लिए कहा जाता है और आज भी माना जाता है कि “भारत में ज्ञान या शिक्षा विदेशी पौधा नहीं है, विश्व में कोई ऐसा देश नहीं है जहाँ ज्ञान के प्रति प्रेम व लगाव इतना प्राचीन हो। कहने का तात्पर्य है इतना चिरस्थायी व प्रभावशाली ज्ञान विश्व का अन्य कोई देश नहीं रख पाया है।”

भारतीय ज्ञान परंपरा हजारों वर्ष पुरानी है। इस ज्ञान परंपरा में आधुनिक विज्ञान प्रबंधन सहित सभी क्षेत्रों के लिए अद्भुत खजाना है, अगर भारतीय ज्ञान परंपरा और दृष्टिकोण को ही अपनाया जाए

तो एक बार फिर से भारत विश्व गुरु बन सकता है। भारतीय ज्ञान परंपरा जो वैदिक काल एवं उपनिषद काल में थी वह बौद्ध और जैन काल में भी रही। विभिन्न विश्वविद्यालयों की स्थापना और शिक्षा व्यवस्था से स्पष्ट परिलक्षित होता है लेकिन इसका लोप विगत 200 से 300 वर्षों में हुआ है। विश्व बौद्धिक संपदा कार्यालय द्वारा पारंपरिक ज्ञान की परिभाषा में- कृषि, ज्ञान, औषधीय ज्ञान, जैव विविधता से संबंधित ज्ञान और संगीत, नृत्य, गीत, हस्तशिल्प के रूप में लोक कथाओं की अभिव्यक्ति जैसी श्रेणियों से संबंधित स्वदेशी ज्ञान शामिल है और यह संपूर्ण ज्ञान हमारी यानि कि भारतीय ज्ञान परंपरा में पाया जाता है। भारतीय ज्ञान परंपरा को समझने के लिए भारतीय समाज की रूपरेखा को समझना अति आवश्यक है। प्राचीन भारत मं समाज को चार वर्गों में बाँटा गया और ये जो सामाजिक व्यवस्था बनायी गई वह जन्म के आधार पर ना होकर कर्म के आधार पर तय थी।

प्रथम वर्ग में ब्राह्मण :- इनका कार्य ज्ञान की वृद्धि ही था, वह गुरु का उत्तरदायित्व निभाते थे और समुदाय को दिशा प्रदान करते थे।

दूसरे वर्ग में क्षत्रिय :- इनका कार्य समुदाय की सुरक्षा से था, यह देश व समाज की रक्षा के लिए युद्ध कौशल में निपुण होते थे।

तीसरे वर्ग में वैश्य :- व्यापार व अन्य लेनदेन संबंधी कार्य करते थे।

चतुर्थ वर्ग में शूद्र :- सेवा कार्य करते थे।

अर्थात वर्ण व्यवस्था थी परंतु कर्म के आधार पर जन्म के आधार पर नहीं। भारतीय ज्ञान के आधार वेद ही माने जाते हैं। आदि काल में वेदों का ज्ञान लिपिबद्ध नहीं था ऋषियों द्वारा वेदों को लिपिबद्ध किया गया। वेदों को भारतीय जीवन दर्शन का स्त्रोत माना जाता है। पुराण और वेद अनादि हैं। वेद के दो भाग हैं (1) पुराण वेद (2) यज्ञ वेद, आजकल व्यवहार में यज्ञवेद को वेद तथा पुराण वेद को केवल पुराण कहा जाता है। प्रारंभ में वेद एक ही था अलग-अलग ऋषियों द्वारा रचित मंत्रों और यज्ञ की विधियों का एक संग्रह था, उसमें मंत्र पद्य के रूप में थे गद्य के रूप में थे या गाने के रूप में थे। वेद व्यास ने वेद को चार भागों में बांटा वे चार भाग हैं (1) ऋग्वेद (2) साम वेद (3) यजुर्वेद (4) अथर्ववेद।

वैदिक काल में विद्याध्ययन का प्रारंभ संस्कार के द्वारा होता था, जिसे उपनयन संस्कार कहते हैं। उपनयन का अर्थ होता है, पास ले जाना। अतः बालक को शिक्षा और शिक्षक के पास ले जाना।

उपनयन संस्कार कहा जाता था। इस संस्कार के बाद बालक ब्रह्मचारी कहलाता था। उपनयन संस्कार बालक का दूसरा जन्म माना जाता था।

शिक्षा निःशुल्क थी, शिक्षण मौखिक था, शिक्षक स्पष्ट और सही उच्चारण पर बल देता था। वर्ष भर का पाठ्यक्रम ऋतुओं के अनुसार बाँटा जाता था। एक विशिष्ट पाठ्यक्रम का भाग एक ऋतु के लिए निर्धारित किया जाता था। **बसंत ऋतु** के पाठ्यक्रम को बसंत पाठ, **ग्रीष्म ऋतु** के पाठ्यक्रम को ग्रीष्म पाठ तथा **वर्षा ऋतु** के पाठ्यक्रम को वर्षा पाठ और **शरद ऋतु** के पाठ्यक्रम को शरद पाठ कहा जाता था। शिक्षा पर राज्य का कोई अधिकार नहीं था। यह गुरु और ब्राह्मणों के नियंत्रण में थी। राजा यदि चाहे तो शिक्षा के लिए अनुदान दे देते थे पर अनुदान से नियंत्रण का कोई संबंध नहीं था। विद्या दो प्रकारों में विभाजित थी अपरा तथा परा अपरा विद्या वेद और उच्चारण, रीतियों, व्याकरण, नक्षत्र, विद्या, ज्योतिष इत्यादि के ज्ञान से संबंधित थी। परा विद्या निर्विकल्प तक पहुँचने का ज्ञान थी जो आत्मा को मोक्ष के रास्ते पर ले जाए अर्थात विद्या का मुख्य उद्देश्य "सा विद्या या विमुक्तये" था कि वह ज्ञान सत्य है जो आवागमन के बंधनों से मुक्त करे।

अनुशासन : विद्यार्थियों को शारीरिक दंड नहीं दिया जाता था। आत्म नियंत्रण आत्म अनुशासन ही सबसे अच्छी अनुशासन की विधि समझी जाती थी। आत्म अनुशासन की आशा किशोर से की जाती थी। स्त्रियों की शिक्षा पर कोई रोक टोक नहीं थी। **शिक्षकों को** बहुत महत्व दिया जाता था। गुरु का स्थान भगवान के समकक्ष माना जाता था। यह माना जाता था कि वही अज्ञानता से ज्ञान के प्रकाश में ले जाने वाला है। इसलिए अत्याधिक आदर का पात्र था। शिक्षक तथा विद्यार्थी का संबंध पिता व पुत्र के समान होता था। प्राथमिक शिक्षा सबके लिए उपलब्ध थी। इस पर ब्राह्मणों का आधिपत्य नहीं था। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए 8,11,12 वर्ष की आयु में शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश दिया जाता था। परा विद्या के अंतर्गत आध्यात्मिक पाठ्यक्रम रखा गया था, जिसमें वेद व उपनिषद, पुराण दर्शन, नीति शास्त्र का समावेश था। अपरा व लौकिक विद्या में (1) इतिहास (2) औषदिशास्त्र (3) अंकशास्त्र जैसे सारे विषय पशु पालन आयुर्वेद, बीजगणित, ललित कला का समावेश था।

परीक्षा- शिक्षा की समाप्ति पर छात्रों की मौखिक परीक्षा ली जाती थी, इसके लिए विद्वान सभाओं में उपस्थित होना होता था। उत्तीर्ण होने पर उपाधियाँ नहीं दी जाती थी। **शिक्षण विधि-** मौखिक शिक्षा की प्रधानता थी, प्रश्नोत्तर, वाद-विवाद और शास्त्रार्थ विधि का प्रयोग होता था। स्मरण, मनन तथा चिंतन विधियों का प्रयोग किया जाता था। प्रशिक्षण विद्यालयों में शिक्षण अभ्यास किया जाता था। **अग्र शिष्य प्रणाली-** का प्रचलन था जो आश्रम में कुशाग्रा बुद्धि विद्यार्थी होते थे वह निम्न छात्रों को पढ़ाते थे। उदाहरणों, सूत्रों तथा मनौवैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रयोग था ।

वैदिक काल की शिक्षा में उपमा, रूपक, लोकोक्ति, कहानी आदि का प्रयोग किया जाता था। छात्रों में होने वाले व्यक्तिगत भेदों पर ध्यान दिया जाता था। सरल से कठिन की ओर चलना ज्ञात से अज्ञात की ओर चलना निगमन आगमन विधि का प्रयोग भी किया जाता था। मनोविज्ञान नहीं था परंतु मनोविज्ञान के सिद्धांतों का प्रयोग किया जाता था। **शिक्षण संस्थाओं का रूप- टोल**, में संस्कृत की शिक्षा प्रदान की जाती थी। एक टोल में एक ही शिक्षक होता था।

चरण- में वेद के एक अंग की शिक्षा दी जाती थी एक ही शिक्षक होता था।

घटिका- में दर्शन व धर्म की उच्च शिक्षा प्रदान की जाती थी। एक घटिका में अनेक शिक्षक होते थे।

गुरुकुल- में वेद, धर्म शास्त्र, साहित्य की शिक्षा दी जाती थी। एक गुरुकुल में एक ही शिक्षक होता था।

परिषद- में विभिन्न विषयों की शिक्षा प्रदान की जाती थी। एक परिषद में साधारणतः 10 शिक्षक होते थे।

विद्यापीठ- इसमें व्याकरण व तर्कशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी, इसमें कई शिक्षक होते थे। विशिष्ट विद्यालय, मंदिर, महाविद्यालय, ब्राह्मणीय महाविद्यालय, विश्वविद्यालय जैसे अनेक संस्थान मौजूद थे।

गुरु शिष्य संबंध- अत्यंत पवित्र और निकट का था जैसे पिता, पुत्र संबंध गुरु के प्रति शिष्यों के कर्तव्य- शिष्य प्रातः उठकर अपने गुरु के चरण स्पर्श करते थे, गायों को चराते थे और भिक्षा मांगकर लाते थे। गुरु के खेतों में कार्य करते थे। गुरु के आदेशों का जीवन भर पालन करते थे।

शिष्य के प्रति गुरु के कर्तव्यः विद्यार्थियों के रहन सहन एवं पालन-पोषण की व्यवस्था करना शिष्य के स्वास्थ्य व चरित्र विकास पर ध्यान देना, शिष्य के बीमार होने पर उसकी सेवा करना, विद्यार्थियों की जिज्ञासा को शांत करना विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास करना। निःशुल्क शिक्षा प्रदान करना।

शिक्षा का सत्र- चार पाँच माह तक चलता था अध्ययन कार्यक्रम श्रवण मास की पूर्णिमा को उपक्रम समारोह के साथ आरंभ किया जाता था। उस समय तक कागज या पुस्तकों का प्रयोग नहीं था। सुबह आठ बजे से शिक्षा कार्य आरंभ हो जाता था। दोपहर में भोजन विश्राम के पश्चात् फिर सायं 5 या 6 बजे तक शिक्षा कार्य चलता था।

अवकाश का समय- छुट्टियों की व्यवस्था थी- संक्रांत, पूर्णमासी, अष्टमी की छुट्टियाँ होती थी इसके अतिरिक्त बाहरी आक्रमण पर डाकुओं के उत्पात पर या राजा के निधन पर मौसम खराब होने पर अवकाश होता था। प्राकृतिक सौंदर्य में अध्यापन कार्य होता ता। आजकल की तरह परीक्षाएं नहीं होती थी गुरु को जब विश्वास हो जाता था कि शिष्य को भलीभाँति समझ आ गया है तभी नया ज्ञान शुरु किया जाता था। समावर्तन संस्कार के बाद ही विद्यार्थी स्नातक कहलाने के अधिकारी होते थे।

ब्रह्मचारी जीवन समाप्त होता था। आचार्य दीक्षांत भाषण के रूप में समावर्तन उपदेश देते थे। अतः कह सकते हैं कि शिक्षा का व्यावहारिक रूप था पुस्तकीय नहीं गरीब, अमीर सभी छात्र बराबर होते थे, सबमें भाईचारे का संबंध था। राष्ट्रीय संस्कृति की रक्षा और प्रसार पर भी जोर दिया जाता था। चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक दायित्व का विकास आदि को भी पाठ्चर्या में शामिल किया जाता था।

निष्कर्ष- आज यह महती आवश्यकता का विषय है कि हमारी समस्त प्राचीन परम्पराएं यथा तिलक लगाना, कर्णवेध, मुंडन, समस्त संस्कार, गंगा में अस्थि विसर्जन, शमशान के पश्चात स्नान, आरती करना, घंटी बजाना, यज्ञाग्नि प्रज्ज्वलित करना, शिखा रखना, चरणस्पर्श करना आदि के पीछे बड़ी बड़ी वैज्ञानिक मान्यताएं है, उनका शोध तथा कृत शोध को आगे बढ़ा युवा व बालपीढ़ी के समक्ष लाये जाने की आवश्यकता है।

योगः हम योग का प्रायः संकुचित अर्थ ग्रहण करते हैं, किन्तु योग एक सहआयामी शब्द है। इस योग ने हमें वैश्विक स्तर पर पहचान दिलाई है। 21 जून को सम्पूर्ण विश्व में 'योग दिवस' मनाया जाता है 'युज्यते अनेन इति योगः" अर्थात जिसके द्वारा जोड़ा जाए वाह योग है। आचार्य पतंजलि ने इसका शास्त्रीय अर्थ 'योगश्चित्तवृतिनिरोध' बताया तो **श्रीकृष्ण ने** कर्मयोग भक्तियोग, ज्ञानयोग के बारे में बताकर सम्पूर्ण मानवजीवन के उद्देश्य को ही तीन भागों में बांट दिया। इस प्रकार योग व्यक्ति को ब्रह्मांड से, आत्मा को परमात्मा से व साधक को साध्य से जोड़ने का साधन है।

उपनिषद ज्ञान की अमूल्य निधि है। उपनिषदों में प्रतिपादित सृष्टि उत्पति सिद्धात, उपनिषद का पंचकोश सिद्धात विभिन्न संवाद आत्मा की जाग्रति का वैज्ञानिक सिद्धांत स्थूल-मध्य कारण शरीर, कर्म सिद्धांत आदि पर जितना शोध किया जाए उतनी ही नवीन व वैज्ञानिक अवधारणाए प्राप्त होती हैं। **भागवत पुराण** के अनुसार- जब संसार अन्धकार से उबरा तो जल में प्रारंभिक मूल प्रकृति में वनस्पति का बीज उत्पन्न हुआ, जिससे पौधों को जीवन मिला। पोधों से कीटाणु उत्पन्न हुए जो जीव अनुक्रम में कीड़े, सांप, कछुआ, पक्षी, पशु आदि अवस्थाओं से होते हुए मानव रूप प्राप्त किये। पौधों व जीवों की

उत्पति का यह विशुद्ध वैदिक ज्ञान है।" ऋषि मुनि के अनुसार, "सभी जीव अपनी पुरानी पीढ़ियों के जीवित रहने की क्षमता को अपनाकर आगे बढ़ते रहे ।" सोलहवीं सदी के वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन ने इसे 'डार्विन विकासवाद' प्रणाली का नाम दिया ।"

<u>ज्यामिति</u> के कई महत्वपूर्ण नियमों की खोज बोधायन द्वारा करना, शून्य तथा दशमलव प्रणाली का जनक भारत होना पिंगलाचार्य के छंद नियमों का एक तरह से द्विअंकीय (बाइनरी) गणित का कार्य करना, महर्षि भारद्वाज का विमान शास्त्र वेदांग ज्योतिष में सूर्य चन्द्रमा नक्षत्र, सौर मंडल के ग्रह और ग्रहण के विषय में जानकारी, भास्कराचार्य द्वारा सिद्धानशिरोमणि ग्रंथ में गुरुत्वाकर्षण का उल्लेख करना, शताब्दियों पूर्व नौवहन की कला का जन्म होना, भगवान राम द्वारा यमुना पार करने के लिए। यह सब भारतीय ज्ञान परंपरा का सिर्फ एक ही भाग कहा जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

- जायसवाल डॉभारतीय शिक्षा का इतिहास तता समस्याए -सीताराम .ं .सं.पृ ,415 ,628 ,
- शाह अमित (गृहमंत्री), ,सितंबर 52002 प्रेस अमर उजाला।
- पाठक.डी.पी ,, भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ .सं.पृ ,4,5
- माथुर डॉ .सं.पृ ,शिक्षा के दार्शनिक तथा समाजशास्सत्रीय आधार .एस.एस .172 ,173 ,174,175
- गुप्ता महावीर प्रसाद एवं ममताभारतीय , शिक्षा का विकास .सं.पृ ,3,4,5
- दैनिक जागरण ,20 दिसंबर ,1999 .सं.पृ ,3